अध्याय V: उद्धार (REDEMPTION)

> **"ईश्वर के ज्ञान और उसकी स्वीकृति पर ही प्रत्येक व्यक्ति का उद्धार (मुक्ति) निर्भर करता है।" — स्वीडनबर्ग (Swedenborg)**

> **"यह महान, अजन्मा, अजर, अमर, निर्भय आत्मा ही ब्रह्म है; ब्रह्म वास्तव में निर्भय है: जो इसे इस रूप में जान लेता है, वह स्वयं निर्भय ब्रह्म बन जाता है।" — वृहदारण्यक उपनिषद्, IV. 4. 25**

एक ऐसे समाज में जहाँ ईश्वरवादी विचारधारा (Deistic thought) का वर्चस्व है, जो ईश्वर और मनुष्य के बीच एक कभी न पाटी जा सकने वाली खाई का निर्माण करती है, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि वहाँ मुक्ति **(Salvation)** की अवधारणा किसी ऐसे मध्यस्थ की कृपा से पापों की क्षमा प्राप्त करने से अधिक व्यापक नहीं हो पाती जो प्रभु यहोवा के अधिक निकट और प्रिय हो। ईसाई धर्म में मुक्ति की अवधारणा इसी प्रकार के विश्वास का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। चाहे इसे ईसा मसीह के कष्टों और मृत्यु के माध्यम से ईश्वर की कृपा को 'खरीदने' के रूप में समझा जाए, या ईसा के प्रायश्चित द्वारा मनुष्यों को पापों के बंधन और ईश्वरीय नियमों के उल्लंघन के दंड से मुक्त कराने के रूप में; आधुनिक ईसाई चर्च में उद्धार **(Redemption)** का विचार मनुष्य को सीमित और दूसरे की इच्छा पर आश्रित छोड़ देता है। यह अवधारणा 'मुक्ति' (Salvation) और 'उद्धार' (Redemption) शब्दों के वास्तविक अर्थों के बिल्कुल विपरीत है। यदि दो हजार वर्ष पूर्व बहाया गया ईसा मसीह का रक्त ही मुक्ति का एकमात्र मार्ग और साधन है, तो जिन लोगों के लिए वह रक्त बहाया गया था, उन्हें ईसा के अस्तित्व को स्वीकार करते ही तुरंत मुक्त हो जाना चाहिए था। परंतु व्यावहारिक रूप से इस दावे का समर्थन करने के लिए कुछ भी नहीं है। वास्तविकता यह है कि आज अधिकांश लोग उन गुणों और योग्यताओं से पूरी तरह अज्ञानी हैं जो एक मुक्त आत्मा (Redeemed One) में होनी चाहिए।

उद्धार और स्वर्ग की वास्तविक अवधारणा

धर्म में उद्धार **(Redemption)** की वास्तविक अवधारणा केवल पापों की क्षमा या दंड से बच निकलने तक सीमित नहीं है। इसमें आत्मा के उन शक्तियों और गुणों की पुनर्प्राप्ति द्वारा उसके आध्यात्मिक व्यक्तित्व का विस्तार शामिल है जो अब तक 'बंधक' (pledge) थे। इसलिए, उद्धार में अनिवार्य रूप से एक ऐसे जीवन का विचार होना चाहिए जो पाप की स्थिति में रहने वाले मनुष्य के जीवन की तुलना में अधिक पूर्ण, गौरवशाली और प्रचुर हो। 'मुक्ति' (Salvation) शब्द का वास्तविक अर्थ भी यही है— जिसका अर्थ स्वास्थ्य, सुरक्षा और पूर्णता (wholeness) से है।

चर्च के उपदेशकों ने मसीह की वास्तविक शिक्षाओं को अत्यंत संकुचित कर दिया है। आनंदमयी अस्तित्व की स्पष्ट अवधारणा बनाने में असमर्थ होने के कारण, इन व्याख्याकारों ने स्वर्ग **(Heaven)** की कल्पना को केवल एक ऐसे भौगोलिक स्थान तक सीमित कर दिया है जहाँ भौतिक मृत्यु के बाद लोग हाड़-मांस के शरीर के साथ उठेंगे और विलासितापूर्ण सुखों का भोग करेंगे। वे यह देखने में विफल रहते हैं कि उनकी यह सर्वोच्च धार्मिक कल्पना भी केवल इंद्रिय-जन्य सुखों (sense-gratification) से ऊपर नहीं उठ पाती है।

चाहे चर्च का स्वर्ग कितना भी सुंदर और भव्य क्यों न हो, क्या वास्तव में किसी बाहरी स्थान में रहने मात्र से आत्मा को सच्चा आनंद प्राप्त हो सकता है? जो कुछ भी आत्मा के बाहर से आता है, वह केवल इंद्रियों के माध्यम से संवेदना (sensation) के रूप में ही प्रवेश कर सकता है। चूंकि संवेदनाएँ हमेशा सुखद नहीं होतीं और अत्यधिक दोहराव से वे भी अरुचिकर हो जाती हैं, इसलिए भौतिक शरीर के साथ स्वर्ग में जाने पर भी मनुष्य को दुःख और दर्द से स्थायी मुक्ति नहीं मिल सकती।

परमानंद **(Bliss)** एक आंतरिक भाव है, जो सभी इच्छाओं से मुक्ति की भावना से उत्पन्न होता है। यह किसी बाहरी परिस्थिति, पर्यावरण या स्थान से पूरी तरह स्वतंत्र होकर अपने स्वयं के अस्तित्व में स्वतंत्रता और पूर्णता की चेतना से प्रकट होता है। इसलिए, कोई भी बाहरी शक्ति—चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक—आत्मा को परमानंद प्रदान नहीं कर सकती यदि वह स्वयं भीतर से इस भावना से रहित हो।

उद्धार की व्यावहारिक कसौटी

जब कोई व्यक्ति किसी गिरवी रखी हुई वस्तु का कर्ज चुका देता है, तो वह तुरंत उस वस्तु को वापस पाने का अधिकारी हो जाता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उद्धार के साथ ऐसा ही होना चाहिए। यदि चर्च की व्याख्या सही है, तो ईसा मसीह को उद्धारक मानने के बाद

मिलने वाला परमानंद किसी अनिश्चित भविष्य पर क्यों टाल दिया जाता है? हम उसे तुरंत यहाँ और अभी क्यों नहीं अनुभव कर पाते? जैसा कि कवि टेनिसन (Tennyson) लिखते हैं:

> *"यह जीवन है, मृत्यु नहीं, जिसके लिए हम तड़पते हैं; अधिक जीवन और पूर्ण जीवन ही है जो हम चाहते हैं।"*

सामान्य ज्ञान गवाही देता है कि उद्धार कर्ज चुकाने से होता है, न कि ऋणदाता या उसके पुत्र को संसार का रक्षक मान लेने से। और जहाँ चुकाया जाने वाला कर्ज बाहरी वस्तुओं के भले-बुरे के ज्ञान (सांसारिक सुखों) में लिप्त न होना हो, वहाँ कर्जदार के अलावा कोई अन्य व्यक्ति उस कर्ज को कैसे चुका सकता है? सच तो यह है कि चर्च के पास 'पतन' और 'उद्धार' की वास्तविक अवधारणाओं का कोई ज्ञान नहीं है, और इसीलिए वह हमें उस मुक्ति के आनंद का स्वाद चखाने में असमर्थ है जो हर व्यावहारिक धर्म को कराने में सक्षम होना चाहिए।

'पतन' (The Fall) का अर्थ यदि जीवित प्राणियों के लिए नश्वरता, अपूर्णता और दुःख है, तो उद्धार **(Redemption)** अमरता, पूर्णता और परमानंद का द्वार है। पतन उस स्थिति को दर्शाता है जिसमें भौतिक शरीर के साथ तीव्र तादात्म्य (identity) के कारण शरीर रूपी मंदिर में रहने वाला अमर 'किराएदार' (आत्मा) अपने वास्तविक गुणों को दबा देता है। इसके विपरीत, उद्धार वह अवस्था है जिसमें यह 'किराएदार' स्वयं को न केवल शरीर से भिन्न जानता है, बल्कि स्वयं को पूर्ण परमात्मा**—**सर्वज्ञ**,** अमर और आनंदमयी के रूप में पहचानता है।

मनुष्य अपने भौतिक शरीर (जो पदार्थ का एक नाशवान यौगिक है) को अत्यधिक महत्व देता है और भीतर बैठे ईश्वर की उपेक्षा करता है। इस प्रकार वह अनंत को उसके सिंहासन से उतारकर उसके स्थान पर हाड़-मांस की एक कठपुतली को स्थापित कर देता है। उद्धार इसी दुर्बल मानसिक दृष्टिकोण को बदलने का नाम है ताकि आत्मा अपने दिव्य गुणों को पूर्णता में प्रकट कर सके।

स्वयं के देवत्व में विश्वास की शक्ति

आत्मा शुद्ध चेतना (pure intelligence) के स्वभाव वाली है, और विचार तथा विश्वास के बीच का संबंध यह है कि विश्वास विचारों को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करता है। इसी कारण आत्मा शीघ्र ही वैसी बन जाती है जैसा वह स्वयं के बारे में विश्वास करती है। यदि वह शरीर के साथ अपने तादात्म्य को हटाकर अपने स्वयं के देवत्व (Godhood) पर विश्वास स्थापित कर ले, तो जैसे ही यह विश्वास उसकी चेतना में दृढ़ होगा, वह वास्तव में ईश्वर (God) बन जाएगी।

मुख्य कार्य अपने भीतर के देवत्व पर अटूट विश्वास प्राप्त करना है। इसके लिए मन में संदेह का एक भी अंश नहीं बचना चाहिए, क्योंकि रत्ती भर भी संदेह हमारी श्रद्धा को नष्ट कर देगा। हमें निरंतर अपने मन में यह विचार रखना चाहिए कि **'**मैं ही परमात्मा हूँ**'** और दैनिक जीवन में मन, वचन और कर्म से इसे सुदृढ़ करना चाहिए। इस मार्ग पर थोड़ा सा साहस और प्रसन्नता बहुत काम आती है, क्योंकि मानसिक धरातल पर यह नियम बहुत तेजी से काम करता है कि **'**प्रकृति **(**या ईश्वर**)** उन्हीं की सहायता करती है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं**'**।

रहस्यवाद की रूपकात्मक भाषा में कहें तो, जब आप ईश्वर के साथ अपनी एकता स्थापित करने का प्रयास करते हैं, तो वह भी आपकी ओर कदम बढ़ाता है। आपकी तत्परता के अनुपात में ही उसकी ओर से भी तत्परता दिखाई देती है। हज़रत मुहम्मद ने इस विचार को बहुत सुंदर ढंग से व्यक्त किया है जब वे अल्लाह के शब्दों को उद्धृत करते हैं:

> **"**जो कोई मेरी ओर एक बालिश्त **(span)** बढ़ने की कोशिश करता है**,** मैं उसकी ओर एक हाथ **(cubit)** बढ़ता हूँ**;** और जो मेरी ओर एक हाथ बढ़ता है**,** मैं उसकी ओर दो हाथ बढ़ता हूँ**;** और जो मेरी ओर चलकर आता है**,** मैं उसकी ओर दौड़कर जाता हूँ।**"** — (मुहम्मद के वचन)

अदृश्य शक्तियाँ हमारा हाथ थामकर दुर्गम और पथरीले रास्तों पर हमारा मार्गदर्शन करेंगी; अदृश्य मस्तिष्क हमारे मार्ग में अपने अनुभव और ज्ञान को रख देंगे; चारों ओर शुभ संकेत दिखाई देने लगेंगे और संपूर्ण प्रकृति अपने बंधक स्वामी की वापसी का स्वागत करने और परमानंद के उत्सव मनाने के लिए उत्सुक दिखाई देगी।

हमें केवल अपने मन के दृष्टिकोण को बदलना होगा। यदि हम मुक्त होने का संकल्प कर लें, तो जैसे ही हम अपने मार्ग में बाधक बनना बंद करेंगे, हमारी आंतरिक महिमा प्रकट हो जाएगी। कठिनाई केवल तब तक होती है जब तक मनुष्य संसार के जालों में फंसा रहता है जहाँ 'कंचन' (Mammon) की पूजा की जाती है और जहाँ मनुष्य स्वयं को बंधनों में जकड़ा हुआ कैदी महसूस करता है। जैसे ही वह इस संसार से ऊपर उठता है और यह अनुभव करता है कि वह कोई तुच्छ, दयनीय और सीमित प्राणी नहीं बल्कि वास्तविक सत्-चित्-आनंद है, उसे ऐसे आनंद की प्राप्ति होती है जो मानवीय कल्पनाओं से परे है।

विकास **(Evolution)** का अंतिम लक्ष्य पूर्णता है। मनुष्य अपने आप में एक पूर्ण ईश्वर है, जो अज्ञानता के जाल में फंसा हुआ है; और उसकी स्वाभाविक पूर्णता भीतर से प्रकट होने के लिए संघर्ष कर रही है। यदि हम अपने पतन के कारणों—अर्थात शारीरिक व्यक्तित्व और सांसारिक वासनाओं का त्याग कर दें और उनके स्थान पर सम्यक् श्रद्धा और वैराग्य को स्थापित करें, तो हम तुरंत मुक्त हो जाएंगे। स्वामी रामतीर्थ इस विषय में लिखते हैं:

> "यदि आप अपने भीतर यह विश्वास ले आएं कि आप मुक्त हैं, तो आप इस ब्रह्मांड के रक्षक बन जाते हैं... यदि आप यह मान लें कि आप कभी शरीर नहीं थे, कभी बंधन में नहीं थे... यदि आप वेदांत के साथ यह अनुभव करें कि आप स्वयं रक्षक ऊर्जा हैं, तो आप संपूर्ण संसार के रक्षक हैं... अब बच्चे मत बने रहिए। अपने भीतर के शुद्ध, पापरहित और अविनाशी आत्म-स्वरूप को पहचानिए। आपने चीजों को उल्टा रख दिया है; आपने गाड़ी को घोड़े के आगे बांध दिया है और इसी तरह इस संसार को अपने लिए नर्क बना लिया है... इस संसार से दुःख को पूरी तरह मिटाने का एकमात्र मार्ग यही है कि वास्तविक आत्म-स्वरूप को पहचाना जाए।"

बाइबिल की ऐतिहासिकता बनाम रूपकात्मक सत्य

अब हमें बाइबिल की ओर मुड़ना चाहिए और देखना चाहिए कि वह उद्धार के विषय में क्या सिखाती है। परंतु इसके लिए हमें सबसे पहले ईसाई मत के संस्थापक ईसा मसीह के जीवन और उनकी शिक्षाओं की प्रमाणिकता की जांच करनी होगी।

जहाँ तक ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) का संबंध है, विशेषकर उत्पत्ति (Genesis) के तीसरे और चौथे अध्याय का, यह स्पष्ट है कि दर्ज की गई घटनाएँ इतिहास के तथ्य नहीं हैं, बल्कि वे मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक निष्कर्षों को रूपकों के वस्त्र पहनाने के लिए मनुष्य की कल्पना द्वारा रची गई कहानियाँ हैं। प्राचीन दार्शनिक फिलो (Philo - 80 ई.पू. से 30 ई.स.) और ऑरिजन (Origen - 185 से 254 ई.स.) का भी यही दृष्टिकोण था। ऑरिजन ने बाइबिल की ऐतिहासिक व्याख्या के विरुद्ध तर्क देते हुए कहा था:

> "क्या कोई इतना मूर्ख होगा जो यह मानेगा कि ईश्वर ने किसी माली की तरह अदन के बगीचे में भौतिक पेड़ लगाए थे और उन पर 'जीवन के वृक्ष' और 'भले-बुरे के ज्ञान के वृक्ष' की तख्तियां टांग दी थीं ताकि कोई उन्हें अपने दांतों से चबा सके? या ईश्वर शाम को बगीचे में टहलने जाता था और आदम किसी पेड़ के पीछे छिप गया था? बुद्धिमान पाठक आसानी से समझ सकते हैं कि ईश्वर का 'चेहरा' क्या है और कोई उससे दूर कैसे भाग सकता है?"

न्यू टेस्टामेंट (New Testament) की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। इसके विभिन्न भाग आपस में विरोधाभासों से भरे पड़े हैं। आधुनिक आलोचकों का मानना है कि चारों में से कोई भी गॉस्पेल (Gospel) सीधे ईसा के शिष्यों द्वारा नहीं लिखा गया था। मैथ्यू (Matthew) और ल्यूक (Luke) की गॉस्पेल वास्तव में मार्क (Mark) की गॉस्पेल का ही विस्तृत रूप हैं, जो स्वयं 'क्यू' (Q) नामक एक अज्ञात और सरल दस्तावेज़ पर आधारित थी। चौथे गॉस्पेल (John) को तो अब विद्वान इतिहास मानने से साफ़ इनकार करते हैं और मैथ्यू तथा ल्यूक दोनों के बारे में यह स्वीकार किया जाता है कि उन्होंने कई स्थानों पर कल्पना का सहारा लिया है।

बाइबिल में ऐसे कई विरोधाभास हैं जो ऐतिहासिक दृष्टि से असंभव हैं। उदाहरण के लिए, धार्मिक त्योहारों के दिनों में न्यायिक सुनवाई करना पूरी तरह वर्जित था, इसलिए ईसा मसीह पर पासओवर (Passover) के दिन मुकदमा नहीं चलाया जा सकता था। उन दिनों में हथियार ले जाना भी प्रतिबंधित था, इसलिए मंदिर के रक्षक ईसा को गिरफ्तार करने तलवारें लेकर नहीं आ सकते थे और न ही पीटर के पास तलवार हो सकती थी।

यदि हम इन ग्रंथों को केवल भौतिक जगत की ऐतिहासिक घटनाओं के रूप में पढ़ेंगे, तो हमें इनके लेखकों की बुद्धि पर संदेह होने लगेगा। परंतु सत्य यह है कि प्राचीन लेखकों ने यह विरोधाभास जानबूझकर छोड़े थे ताकि पाठक का ध्यान ऐतिहासिक अर्थ से हटकर उसके रूपकात्मक और आध्यात्मिक अर्थ की ओर जा सके।

सेंट पॉल की गवाही: बाइबिल के रूपक

बाइबिल स्वयं अपनी रूपकात्मक रचना को गुप्त नहीं रखती। स्वयं प्रेरित सेंट पॉल (St. Paul) ने स्पष्ट रूप से घोषणा की थी कि ओल्ड टेस्टामेंट की सबसे पोषित परंपरा—अर्थात पैतृक पूर्वज अब्राहम (Abraham), उनकी दो पत्नियों (सारा और हाजरा) और उनके पुत्रों (इसाक और इश्माएल) की कहानी—जिसे आधुनिक पादरी ऐतिहासिक मानते हैं, वास्तव में केवल एक रूपक **(Allegory)** है!

गलातियों को लिखे अपने पत्र (Galatians iv. 21-31) में सेंट पॉल लिखते हैं:

> **"**यह बातें एक रूपक हैं**:** क्योंकि ये दो पत्नियां वास्तव में दो वाचाएं **(covenants)** हैं**;** एक माउंट सिनाई से है जो दासी हाजरा **(Agar)** है और बंधन को जन्म देती है**...** परंतु ऊपर की यरूशलेम स्वतंत्र है**,** जो हम सबकी माता है।**"**

यहाँ सेंट पॉल ने स्पष्ट कर दिया कि दासी हाजरा वास्तव में 'पुद्गल' (Matter) का प्रतीक है जिसके पुत्र को बाहर निकालना होगा ताकि आध्यात्मिक अहंकार (Ego) अपने वास्तविक उत्तराधिकार को प्राप्त कर सके। इसी प्रकार तीमुथियुस (1 Timothy i. 4) में पॉल लिखते हैं:

> **"**मनगढ़ंत कहानियों और अंतहीन वंशावलियों पर ध्यान न देना**,** जो केवल विवादों को जन्म देती हैं**..."**

प्राचीन काल के प्रबुद्ध पुरुष जानते थे कि बाइबिल की भाषा गुप्त और रहस्यमयी है। उनके अनुसार:

- मूसा **(Moses) =** शुद्ध विवेक **(Pure Reason)**।
- हारून **(Aaron) =** ईश्वरीय वचन **(Logos)** या वाणी।
- नूह **(Noah) =** विश्राम या धार्मिकता।
- लूत **(Lot) =** धर्मी पुरुष।
- एसाव **(Esau) =** नीच और तर्कहीन प्रकृति।
- याकूब **(Jacob) =** तर्कसंगत और धार्मिक चरित्र जो आत्म-अनुशासन से ज्ञान प्राप्त करता है और अंततः 'इज़राइल' (अथवा ईश्वर का दर्शन) बनता है।
- अब्राहम **(Abraham) =** दिव्य विवेक **(Divine Reason)** जो आनंद और उल्लास का जनक है।

नीतिवचन में 'व्यभिचारिणी स्त्री' का रूपक

रहस्यवाद की शैली को समझाने के लिए बाइबिल के नीतिवचन **(Proverbs, Chapter vii)** में वर्णित 'व्यभिचारिणी स्त्री' या वेश्या (Harlot) की कहानी को लिया जा सकता है। यह कहानी एक युवक की है जो रात के अंधेरे में एक वेश्या के जाल में फंस जाता है, जो सुंदर वस्त्रों और मिस्र के सुगंधित इत्रों से सजे बिस्तर पर उसे आमंत्रित करती है और कहती है कि उसका पति घर पर नहीं है और लंबी यात्रा पर गया है।

महान यहूदी विचारक मूसा मैमोनाइड्स **(Moses Maimonides)** इस रूपक की व्याख्या इस प्रकार करते हैं:

> *"इस पूरे रूपक का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को शारीरिक और इंद्रिय-जन्य सुखों (sensual pleasures) के पीछे भागने से रोकना है... यहाँ विवाहित स्त्री जो साथ ही वेश्या भी है, वह वास्तव में **'पुद्गल' (Matter)** या भौतिक शरीर का प्रतीक है, जो सभी शारीरिक इच्छाओं का स्रोत है... मनुष्य की सभी बुराइयाँ और वासनाएँ केवल उसके भौतिक शरीर के कारण उत्पन्न होती हैं... इसलिए मनुष्य को अपनी पशुवत या भौतिक प्रकृति के अधीन होकर नहीं जीना चाहिए।"*

ईसा मसीह का गुप्त मिशन और गुप्त संप्रदाय

ज्ञान का स्वभाव सूर्य की किरणों की तरह चारों ओर फैलना है। हिंदू शास्त्रों के अनुसार:

> *"जो लोग अविद्या (अज्ञान) के पीछे चलते हैं, वे घोर अंधकार में प्रवेश करते हैं; परंतु जो केवल शुष्क ज्ञान (विद्या) में ही लीन रहते हैं और दूसरों के अज्ञान को दूर नहीं करते, वे उससे भी बड़े अंधकार में जाते हैं।"* — ईशावास्य उपनिषद्

ईसा मसीह भी इसी दिव्य मिशन से प्रेरित थे। महावीर और बुद्ध की तरह उन्होंने भी अज्ञानता के अंधकार को दूर करने के लिए सत्य का प्रचार किया। परंतु लोग दर्शनशास्त्र को समझने के बजाय केवल उनके चमत्कारों की ओर आकर्षित हुए। पंचम काल (जो लगभग 2,500 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था) की शुरुआत से ही मनुष्यों में यह धारणा घर कर गई कि किसी अन्य की कृपा या चापलूसी से मुक्ति पाई जा सकती है, ताकि वे बेरोकटोक 'कंचन' (Mammon) की पूजा कर सकें।

ईसा मसीह ने अपनी गहन शिक्षाओं को सर्वसाधारण के सामने प्रकट नहीं किया। उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दिया था:

> **"**पवित्र चीजें कुत्तों के सामने मत डालो**,** और अपने मोती सूअरों के आगे मत फेंको**;** ऐसा न हो कि वे उन्हें अपने पैरों तले कुचलें और पलटकर तुम्हें फाड़ खाएं।**"** — (मैथ्यू vii. 6)

यह कोई काल्पनिक भय नहीं था; प्राचीन काल में ज्ञानियों को सत्य बोलने पर पत्थरों से मार दिया जाता था। स्वयं ईसा को कई बार जान से मारने की धमकी दी गई थी। इसीलिए यहूदियों में 'रथ' (Chariot) के गुप्त अर्थों को बिना सुरक्षा के पढ़ने की अनुमति नहीं थी।

जब अज्ञानता के कारण लोग इन रूपकों का वास्तविक अर्थ भूल गए, तो उन्होंने हिंदू धर्म के ३३ करोड़ देवी-देवताओं की तरह केवल बाहरी प्रतीकों को ही सब कुछ मान लिया। इसके बाद उन्होंने इतिहास मानकर इन ग्रंथों की व्याख्या की और संख्याबल के आधार पर ज्ञानियों पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। इस अत्याचार से बचने के लिए ज्ञानियों ने गुप्त संप्रदायों (जैसे फ्रीमेसनरी - Freemasonry) की स्थापना की और बंद दरवाजों के पीछे अपनी साधना करने लगे।

ईसा मसीह के जन्म का रहस्य

ईसाई धर्म में ईसा मसीह के अलौकिक जन्म **(Immaculate Conception)** को लेकर जो रहस्य बुना गया है, वैज्ञानिक और ऐतिहासिक शोधों ने उसे पूरी तरह नकार दिया है। यह कहानी वास्तव में हिंदू पौराणिक कथाओं के श्रीकृष्ण के जन्म की कथा का ही एक रूपांतरित रूप है।

स्वयं ईसा मसीह ने कभी भी अपने भौतिक शरीर के लिए अलौकिक जन्म का दावा नहीं किया। उन्होंने अपने विरोधियों से कहा था:

> **"**तुम शरीर के अनुसार न्याय करते हो**;** मैं किसी का न्याय नहीं करता।**"** — (यूहन्ना viii. 15)

इसका अर्थ यही था कि वे हाड़-मांस के शरीर के संबंध में उनके लौकिक ज्ञान को गलत नहीं कह रहे थे, परंतु उनका ध्यान आत्मा की ओर आकर्षित कर रहे थे। उन्होंने स्पष्ट किया:

> **"**मैं जानता हूँ कि मैं कहाँ से आया हूँ और कहाँ जा रहा हूँ**;** परंतु तुम नहीं जानते।**"**

मनुष्य शरीर और आत्मा का एक यौगिक है। भौतिकवादी केवल शरीर को जानता है। ईसा मसीह भौतिकवादी दृष्टिकोण की निंदा इसलिए करते हैं क्योंकि वह आत्मा की उपेक्षा करता है। उन्होंने यहूदियों से कहा:

> **"**यदि ईश्वर तुम्हारा पिता होता**,** तो तुम मुझसे प्रेम करते**;** क्योंकि मैं ईश्वर से निकला हूँ**...** तुम मेरी वाणी को क्यों नहीं समझ पाते**?"**— (यूहन्ना viii. 42-43)

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्होंने खुद को ईश्वर का 'इकलौता' पुत्र नहीं कहा, और न ही यह दावा किया कि केवल उन्हीं का जन्म अलौकिक था। 'पुत्रत्व' (Sonship) का सिद्धांत वास्तव में एक आध्यात्मिक नियम है जो पूरी मानव जाति पर लागू होता है। जैसे ही कोई आत्मा अपनी स्वाभाविक पूर्णता को प्राप्त कर लेती है, वह परमात्मा की संतान यानी **'**मसीहा**' (Messiah)** या **'**जिन**' (Jina)** बन जाती है।

निष्कर्ष **(Summary Table)**

रूपक / पात्र	ईसाई व्याख्या	वास्तविक आध्यात्मिक अर्थ
हाजरा और सारा	अब्राहम की दासियां और पत्नियां।	हाजरा **=** पुद्गल **(Matter)** जो बंधन उत्पन्न करती है; सारा **=** मुक्त आत्मा की प्रकृति।
मूसा और हारून	ऐतिहासिक पैगंबर और मार्गदर्शक।	मूसा **=** शुद्ध विवेक **(Reason)**; हारून **=** वाणी **(Speech)**।
इज़राइल की मुक्ति	मिस्र की गुलामी से भौतिक स्वतंत्रता।	इज़राइल **=** बंदी आत्मा; मिस्र **=** संसार; फरोहा **=** भौतिक अहंता जो आत्मा को बांधकर रखती है।
लाल बछिया की बलि	ओल्ड टेस्टामेंट और कुरान का अनुष्ठान ।	लाल बछिया **=** वासनायुक्त मन **(Nafs)** जिसकी बलि (दमन) से मृत आत्मा पुनः जीवित हो उठती है ।
ईसा मसीह का जन्म	कुंवारी मरियम से भौतिक जन्म।	आत्मा का धर्म **(**सम्यक् श्रद्धा**)** में जन्म; बुद्धि पर आत्मा के प्रकाश का प्रकट होना।